ISSN 2349-3887

दोआबा

समय से संगत

वह आती है
धरती के किसी कोने से
उठता है विलाप
आकाश के किसी कोने से
राख झरती है
वह आती है
जीवन की किसी एक पंक्ति पर
विराम चिह्न लगाने की
कोशिश करती हुई

हरी टहनियां किसी पीले पत्ते को
डाल से टूटते हुए देखती है

वह आती है
लेकिन धूल में कहीं भी उनके
पांव के निशान नहीं बनते
उसे हमारी देह से
कुछ भी लेना–देना नहीं
वह सिर्फ सांसों को ले
जाती है चुपचाप

वह सिर्फ उसी को दिखती है
जिसके पास आती है
बाकी लोग सिर्फ महसूस करते हैं
किसी चीज़ के पास से
गुज़र जाने को

स्वदेश दीपक

मैं उसे बताना
चाहता था
मुझे गहरी नींद में
सोना
बहुत पसंद है
मेरी रगों में व्याप्त
तनाव और
अतृप्तता के भाव
मुझे नींद की आगोश में
बार-बार
क्यों ढकेल देते हैं
क्या कोई मुझे
नींद की घाटी में
आमंत्रित कर रहा है
लगातार
कौन होगा वह
कोई परिचय होगा ना
उसका

– *जाबिर हुसेन*

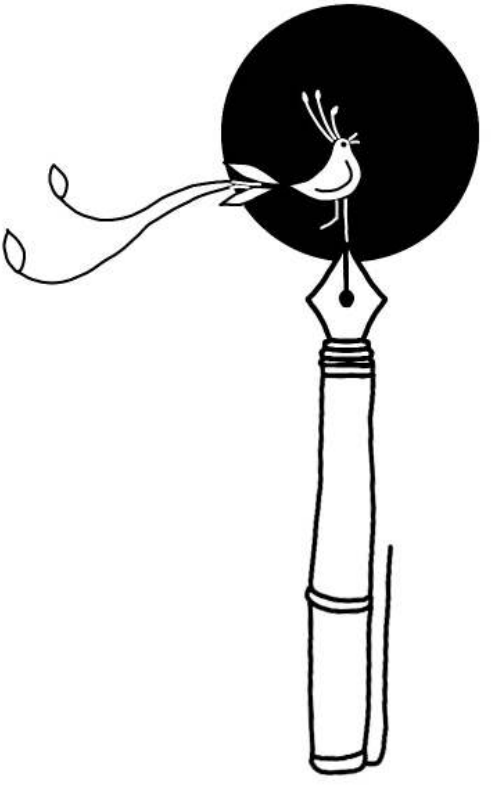

अप्रैल-जून 2025

दोआबा

समय से संगत

दोआबा

समय से संगत

अप्रैल-जून 2025
वर्ष 19 : अंक 52

रेखांकन

अनुप्रिया

मानद सहयोग

शहंशाह आलम
लता प्रासर, पवन कुमार, जावेद एक़बाल

प्रबंध

मोनिश हुसेन

कार्यालय : सुनील हेम्ब्रम

संपर्क
247 एम आई जी
लोहियानगर, पटना - 800 020
e-mail : doabapatna@gmail.com
मो.-08409044236

सर्वाधिकार सुरक्षित

पाकीज़ा ऑफसेट
शाहगंज, पटना-800 006
मो.-09334116542

मूल्य : ₹ 175/- (डाक खर्च अलग)

रचनाओं में अभिव्यक्त विचार रचनाकारों के अपने हैं।
संपादक का इन विचारों से सहमत होना ज़रूरी नहीं।

संपादक **: जाबिर हुसेन**
मो.-09431602575

अप्रैल-जून 2025

दोआबा

समय से संगत

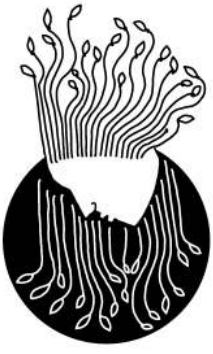

अनुक्रम

जाबिर हुसेन : अपनी बात / 05

रचना समय

निधि अग्रवाल : दीपक तुम जलते रहना / 08
रीना सोपम : यह शहर उस्ताद ज़ाकिर हुसैन के
बनने-संवरने के दिनों का साक्षी रहा है / 23
श्यामल बिहारी महतो : मां का झरोखा / 28
शंकर : आशीर्वाद / 32
शम्भु प्रसाद सिंह : अनुत्तरित प्रश्न / 37
अनामिका प्रिया : कैफ़िटेरिया / 43
पूजा गुप्ता : उसका निर्णय / 49
यशोधरा भटनागर : यूनिफार्म / 56
मृदुल शर्मा : मिट्टी का मोह / 59
पुष्पेश कुमार पुष्प : आतंक / 63
नमिता सिंह 'आराधना' : अंतिम पहर / 68

कविता समय

शहंशाह आलम / 72
पंकज कुमार सिंह / 75
प्रियदर्शन / 79
रेखा शाह आरबी / 83
अशीष दशोत्तर / 86
सपना दलवी / 93
प्रज्ञा गुप्ता / 94
बिभाश कुमार / 97

संवाद

जल जंगल ज़मीन (हरिराम मीणा)
आदिवासी समाज और जल-जंगल-ज़मीन के सवाल / 102
नोआखाली (सुजाता)
अभिषेक मुखर्जी : नोआखाली - एक व्यक्ति की विजयी सेना / 110
बारिश बाजा बजाती है (शहंशाह आलम)
वंदना गुप्ता : प्रेम की सघन अनुभूतियों में बदलते वक़्त की यथार्थ तस्वीरें / 120
रेत का सफ़र (जाबिर हुसेन)
प्रीति सिन्हा : संवेदनाओं की मंजूषा / 123
ज्योति जिंदा है तथा अन्य कहानियां (रानी श्रीवास्तव)
राजकिशोर राजन : अपने समय की पदचाप सुनाती कहानियां / 126

दोआबा-51 (जनवरी-मार्च, 2025)

शहंशाह आलम : बचे हुए अच्छे समय को बचाए रखने के
अभियान में लगी *'दोआबा'* / 130
अब्दुल ग़फ़्फ़ार / 133
सुधीर सुधाकर / 134
नीरज नीर / 134
राजेश कुमार मिश्र / 135

□□

जाबिर हुसेन

एक गुमनाम राहगीर

अपने गांव के पहाड़ की तराई में ख़ामोशी से बहनेवाली वह झील मुझे अक्सर नींद में चौंका जाती है।

पहाड़ का सीना चीर कर बहते पानी की धार को साफ़-शफ़ाफ़ झील में तब्दील होते मैं बरसों से देखता रहा हूं। झील के चारों ओर बनी पतली राहदारी में बैठे मैं सोचता हूं इस राहदारी में पत्थरों के एक टीले पर कभी तन्हा चलने वाला एक राहगीर सूरज उगने से पहले आकर बैठ जाता और अपनी आंखें फैला कर झील के पानी में तैरने वाली मछलियों को निहारता रहता था। मछलियां उसे अच्छी तरह पहचानती थीं। वो कपड़ों में छिपाकर रखी एक पोटली से कुछ दाने निकालकर मछलियों के आगे डाल देता था। कुछ देर में ही दाने पानी की लहरों में खो जाते थे। मैंने अक्सर देखा था, दाने चुन-चुन कर मछलियां लहरों से खुद को बचाती झील की गोद में छिप जाती थीं।

राहगीर झील की इन ख़ामोश लहरों को अच्छी तरह पहचानता था। लहरें भी उसे जानती-पहचानती थीं। और मछलियां, वो तो उसकी पोटली में सहेजकर रखे दानों के स्वाद को भी पहचानती थीं।

इस बार बारिश कुछ ज्यादा ही हो गई थी, और पहाड़ी से गिरनेवाले पानी का बहाव तूफ़ानी आवेग के साथ झील की सीमाएं लांघकर बाहर आ गया था। ऐसे में, झील में तैरती मछलियां पानी से बाहर निकलकर राहदारी में जमा हो गईं थीं। मेरी आंखें यह सारा दृश्य देखकर फटी रह गई थीं।

झील का पानी हमेशा की तरह मीठा था। मछलियां झील के पानी की मिठास की आदी थीं।

राहगीर आज कुछ थका-मांदा था। उसके बाज़ू आम दिनों से कुछ ज्यादा बोझिल दिख रहे थे। शायद उसने दो पहाड़ों के बीच की दूरी तेज़-तेज़ क़दमों से तय की थी। उसके तलवों की गर्म सतहों में कुछ फफोले उभर आए थे। उसे इन फफोलों में हल्का तनाव महसूस हो रहा था। राहगीर ने अपनी आंखें ऊपर कीं और दो पहाड़ियों के बीच आकाश से उभरते सूरज को देखा। जो राहगीर के थके चेहरे को देखकर हल्की मुस्कुराहट में लीन था। झील का पानी मछलियों की बेताबी देख स्थिर हो चला था।

यकायक राहगीर को झील के पानी की निचली सतहों से एक अजीब आकृति उभरती महसूस हुई। चेहरे पर कुछ अपरिचित भाव दिखे, जो उसे बेचैन करने वाले थे। झील के पानी की दरमियानी सतहों पर तैरती मछलियों की हलचल स्थिर हो गई थी।

राहगीर झील की राहदारी से चलकर कंकरीली सड़क पर आ गया था। रोशनी की किरणें झील की ऊपरी सतहों पर छा गई थीं।

□

कोई फनकार एक ज़िंदा टीस की तरह हमारी आंखों के आगे खड़ा है।

आख़िर कितने साल हुए, जब एक सुबह वो अपने घर से निकल फ़िज़ाओं में खो गया था। अख़बारों में, कई दिन बाद, एक छोटी ख़बर छपी कि वरिष्ठ नाटककार स्वदेश गुम हो गए। घर के लोग, दोस्त-अहबाब, प्रशासन सब ने तलाश शुरू की, पर कोई सुराग़ नहीं मिला। आज, इतना समय बीतने पर भी उसका कोई पता नहीं मिला।

दिल्ली स्थित स्वर्ण जयंती सदन की सातवीं मंज़िल की बालकनी में बैठा मैं घंटों सोचता रहा, कहां गया होगा वह नाटककार जिसने अपने नाटकों से मंच की दुनिया सजाई थी। जिसके पात्र अपने शब्दों से दर्शकों के दिल की धड़कनें बढ़ा देते थे। किस दुनिया में खो गया था वह नाटककार।

तब से आज तक, एक ज़िंदा टीस की तरह, वो हमारी आंखों के परदे पर घूमता रहता है।

डॉ. निधि अग्रवाल ने अपने स्मृति-आलेख में उसे फिर से मंच के केन्द्र में ला खड़ा किया है। एक आग की तरह उसके संवाद हमारी टीस को झुलसा रहे हैं, झुलसा रहे हैं।

□□